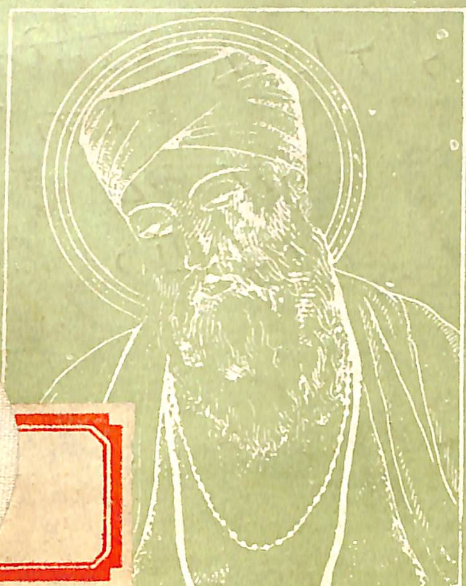
जप-जी-शतकम्



स्वयं प्रकाश शर्मा
शास्त्री-एम॰ ए॰ साहित्य ज्योतिषाचार्य

[illegible]

जप-जी-शतकम्

रचयिता :
स्वयम्प्रकाश शर्मा शास्त्री
M. A.
साहित्यज्यौतिषाचार्य

भूमिका लेखक :
कविरत्न श्री पं० प्रभुदत्त स्वामी
साहित्याचार्य
साहित्यविभागाध्यक्ष
श्री विल्वेश्वर संस्कृत कालेज, मेरठ ।

प्रथम संस्करण १९७६ मूल्य ४.०९

प्रकाशक :

स्वयम्प्रकाश शर्मा शास्त्री

प्राप्ति-स्थान :—

(i) T/२६/५ रुड़की रोड़ कैम्प, मेरठ कैन्ट

(ii) C/o Principal Sh. Durga Academi

मु० पो० बलाचौर

जि० होशियारपुर (पञ्जाब)

मुद्रक :

सर्वोदय प्रेस,

मेरठ ।

फोन : ७४३५२

"समर्पणम्"

'तत्ववेत्ता' परम पूज्य आदि-गुरु श्री गुरु नानक देव जी

के

चरण कमलों में

समर्पण कर्त्ता :—

स्वयं प्रकाश शर्मा

भूमिका

'दर्शन कवि का निसर्ग है। कवि परम्परा सदा से काव्य में दर्शन की अवतारणा करती आई है। आधुनिक कवि दर्शन को ही काव्य का रूप देने में प्रवृत्त हैं। संस्कृत कवि भी इसके अपवाद नहीं हैं। श्री स्वयं प्रकाश शर्मा ने कई काव्य-ग्रन्थ संस्कृत में लिखे हैं। जिनमें 'इन्द्रयक्षीयम्' और 'अमृतमन्थनम्' प्रकाशित हो चुके हैं। श्री शर्मा ने दोनों का विषय उपनिषदों से लिया है, उनका 'इन्द्रयक्षीयम्' केनोपनिषद् पर और 'अमृतमन्थनम्' कठोपनिषद् पर आधृत है। जो विद्वत् समाज में बहुश समादृत एवं पुरस्कृत हुए हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि उन की तीसरी काव्यकृति 'जपजीशतकम्' प्रकाशित हो रही है है श्री शर्मा की इस रचना का विषय भी दार्शनिक ही है। उन्होंने जिस तत्त्व का दर्शन उपनिषदों में किया वही उन्हें सिक्खों के आदि गुरु श्री गुरु नानक देव जी की पौड़ियों में भी दृष्टिगोचर हुआ है। श्री शर्मा पञ्जाब की भूमि में जन्मे हैं अतः उनमें गुरु नानक देव के चिन्तन के प्रति आकर्षण और आस्था होना स्वाभाविक है। वास्तव में गुरु नानक देव के स्वतन्त्र चिन्तन में भी औपनिषद चिन्तन की अपेक्षा कोई सूक्ष्म भेद नहीं दिखाई देता। सत्य का स्वरूप सर्वत्र एक और अभिन्न ही होता है। श्री स्वयम् प्रकाश की इस दार्शनिक काव्यकृति में 'जपुजी साहब' और वेदान्त का 'ब्रह्म' या 'ओ३म्' मिलकर एक हो गये हैं। मैं इस सुन्दर कृति के लिये श्री शर्मा को बधाई देता हूँ, और मुझे आशा है कि संस्कृत के सहृदय मर्मज्ञों और विद्वान् सिक्खों में 'जपजीशतकम्' समान रूप से आदृत होगा।

हस्ताक्षर प्रभुदत्त स्वामी
साहित्याचार्य साहित्यविभागाध्यक्ष
श्री विलवेश्वर संस्कृत कालेज, मेरठ।

"स नित्यशुद्धः प्रभुशाश्वतैकः
सर्वेश्वरः सर्वजगन्नियन्ता ।
विरच्य विश्वं स बिभर्ति चैनं
आज्ञा च तस्यैव सुपालनीया ।।"

'जपुजी' साहित्यमनुसृत्य, 'तस्याज्ञा सुपालनीयेति' तस्यैवाज्ञां परिपालनीयां पालयन् कविवरेण्यः स्वयम्प्रकाशः स्वयम्प्रकाशः शर्मा तस्यैव महिमानं गायति । अत्र शतकेन ३८ गाथाः गायन् कविः वैदिकीं शैक्षिकीञ्च अनुवदति । शिष्याणां शिक्षकानाञ्च 'जपन' परिपाटीं 'जपतु' इति आज्ञया—भोः जपतु—जपुजी इति निदर्शयति । गुरुरेवमेव उपदिशति । गुरोरुपदेशः जपनीय इति । 'जपुजी'-शतकाय संस्कृतप्रकाशिताय मदीयानि अपि शुभानि वचांसि प्राप्नुयुरिति शम् ।

सुधाकराचार्यः

डा० सुधाकराचार्यः
त्रिपाठी सी-६, विश्वविद्यालयक्षेत्रे
मेरठविश्वविद्यालये, मेरठनगरे
उत्तरप्रदेशे (२५०००१)

"JAPJI SHATAKAM"

By Pt. Swayam Prakash Sharma

Pt. Swayam Prakash Sharma worked all through his life in the D. A. D. and has recently retired as accounts officer from that Deptt. of Central Government.

His love for Sanskrit was so passionate that he constantly studied Sanskrit in his spare time, and was able to produce remarkable works in Sanskrit for which he got universal appreciation Awards and financial assistemce from diffrent govt Sourrces.

His latest work in Sanskrit verses which draws fundamental inspiration from Shri Guru Nanak' s "Japuji Sahab" is "Japji Shatakam" wherein latent and subtle ideas have been unfolded and expanded with an original touch quoting illustrations from various scriptures. The masterly way in which "Japuji Sahib" has been reflected through the medium of Sanskrit verses by the ingenuity of Shri Sharma, will make it immortal in the Realm of Sanskrit. I sincerely congratulate the author for his first attempt in Sanskrit on Sikh Religion.

I wish him all success sn his missson.

(D. N. SHASTRI)

M. A., M. O. L., D. Litt.

Advisor, Institute of Indology

New Delhi

विनम्र निवेदन

श्री गुरु नानक देव जी की पवित्र वाणी **'जपुजी-साहिब'** किस भक्त के हृदय को भक्ति रस से आप्लावित नहीं करती ? कुछ समय पूर्व मुझे उनकी यह अमृतमयी वाणी पढ़कर जितना आनन्द वा आन्तरिक शान्ति प्राप्त हुई उसका अपनी लेखनी द्वारा वर्णन कैसे हो सकता है और वाणी द्वारा कथन भी नहीं हो सकता—वह तो 'गूंगे के गुड़' खाने के सदृश ही कहा जा सकता है या फिर "गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी" जैसी कुछ दशा मेरी हो गई।

मैंने **'जपुजी साहब'** में उसी नित्य-शुद्ध-बुद्ध-ब्रह्म का अत्यन्त सरल भाषा में प्रतिपादन हुआ देखा जिसका वर्णन वेदों, उपनिषदों, गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है। वही मौलिक सिद्धान्त एवं सत्य का सुन्दर रूप में वर्णन मुझे यहाँ मिला जिसका निरूपण संसार के सभी धर्माचार्य अपनी २ भाषा में करते हैं।

जपु-जी-साहिब को पढ़ने के बाद मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि इसके भावों को सरल संस्कृत में अपनी मौलिक शैलि एवं निजी विचारधारा से व्यक्त किया जावे, इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह "जपजी-शतकम्" लिखा है—१०३ श्लोकों में अपने मौलिक ढंग से अपने अनूठे भावों में सरल संस्कृत वाणी में गुरु वाणी को यथाशक्ति व्यक्त करने की चेष्टा की है। यदि मेरे इस प्रथम प्रयास से पञ्जाबी एवं संस्कृत विद्वान् कुछ भी सन्तुष्ट हों या उनका किञ्चिन्मात्र भी विनोद ही तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगा।

मेरी पहली रचना की भान्ति, इस रचना में भी मेरे पूज्य गुरु श्री प्रभुदत्त स्वामी जी का ही पवित्र एवं निःस्वार्थ पथ प्रदर्शन रहा है जिसके लिए मैं उनका सदा आभारी बना रहूँगा।

आशा है विद्वज्जन मेरे प्रति मेरे पूर्व ग्रन्थों की भाँति उदार-भाव एवं दया-दृष्टि रक्खेंगे।

पौषकृष्ण सफलैकादशी सं० २०३३ | **विदुषामनुचरः**

दिनाङ्क १७-१२-७६ | **स्वयं प्रकाश शर्मा**

ओ३म्

अथ

"जप-जी-शतकम्"

गणाधिराजं गुरुमादिवन्द्यं
पूज्यं समेषां, जपमात्रलभ्यम् ।
प्रणम्य भक्त्या गुरुनानकोक्तं
जपस्य माहात्म्यमुपब्रवीमि ॥१॥

जप से ही प्राप्त करने योग्य सब के पूज्य आदि वन्दनीय गुरु गणेश जी को मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करके श्री गुरु नानक जी द्वारा कही गई (जपु जी साहिब में) जप की महिमा को कहता हूँ ॥

ऊँकारनाम्ना पुरुषैक एव
निर्वैरभीतिर्जनुषा विहीनः ।
अकालमूर्तिश्च जगद्विधाता
परोऽपि नित्यं हृदये निविष्ठः ॥२॥

वह ऊँकार, एक ही परम पुरुष है । जिसे किसी से न वैर है और न भय है वह अजन्मा है अकाल मूर्ति है संसार का रचयिता है वह बहुत दूर होते हुए भी (प्राणियों) के हृदयों में समाया हुआ है ।

नोट—यही भाव गीता के अध्याय २ श्लोक २० में व्यक्त किए गए हैं ।—

"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे"—गीता २/२०

ठीक यही शब्दावलि कठोपनिषद के अध्याय १ मन्त्र १८ में भी कही गई है—कठोपनिषद् के अध्याय १ मंत्र १५ में परमात्मा को ॐ कहा है। "**तत्ते पदं संग्रहेण ब्रबीम्योमित्येतत्**" कठो० १–१५ फिर देखिए गीता अ० ८ **श्लोक ११–१३** और "प्रणवः सर्ववेदेषु"—**गी०** ७/८ और 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म"—गी० ८/१३।

स सच्चिदानन्दघनस्वरूपः
सदा प्रजानां शिवमेव कर्ता।
स्वयं प्रकाशः परिभूः स्वयंभूः
गुरोर्दयालोः कृपयैव लभ्यः ॥३॥

वह परमेश्वर सत्-चित् तथा आनन्द स्वरूप है। जो सदा, प्राणियों का हित ही करता है, वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है। वह सब से ऊपर है। सर्वव्यापक है। स्वयं ही होता है। (उसका पैदा करने वाला और कोई नहीं) ऐसा परमात्मा दयालु गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है (उसको प्राप्त करने का और कोई उपाय नहीं है)।

नोट—परमेश्वर को "**कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः**" ईषोपनिषद् में कहा गया है (जो शुक्लयजुर्वेद संहिता का चालीसवाँ अध्याय है)
(देखिए ईशोप० मंत्र ८)

स एव शर्वः पुरुषः पुराणः
आदौ समासीच्च युगादिकाले।
विश्वस्य भद्रं सततं चिकीर्षुः
कालत्रयेऽपि स्थितिमावभार ॥४॥

वही परमेश्वर पुरातन पुरुष है। सबका कल्याण करने के कारण उसे शर्व, शिव, शंकर भी कहते हैं। वही परम तत्त्व सृष्टि के आदि में युगारम्भ

में भी था और अन्त में भी रहेगा, वह समस्त संसार के सदा कल्याण करने की इच्छा करता है। इसीलिए तीनों कालों में (भूत, वर्तमान तथा भविष्यत) में सदा समान रहता है।

न चायमात्मा बहु चिन्तनेन
न चापि मौनेन समाधिना वा।
विवृद्धतृष्णाश्रयणेन वापि
नैवोपलभ्यो धनसञ्चयैर्वा ॥५॥

यह आत्मा (या परमात्मा) बहुत सोचने से नहीं मिलता और न ही मौन धारण करने से, और न ही समाधि लगाने से वह मिल सकता है—तृष्णा को ज्यादा बढ़ाने से या अधिक धन इकट्ठा करने से भी वह परमेश्वर नहीं मिलता।

नोट—आत्मा बाह्य कृपा साध्य नहीं, वह केवल आत्म कृपा साध्य ही है। इस बात को कठोपनिषद् में इसी प्रकार स्पष्ट किया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ ऊँ स्वाम् ॥
—कठो० १--२--२३

मुण्डकोपनिषद् में भी ऐसा ही कहा है गीता के अध्याय ११ श्लोक ५३ में भी यही भाव व्यक्त किया है।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन च चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ **गीता ११–५३**

न कूटचातुर्य्यविदग्धवृत्ति-
रेकोऽपि तं बोधयितुं समर्थः ।
प्रभोस्त्वनुज्ञां परिपालनेन
विजित्य मायां समुपैति सत्यम् ॥६॥

कोई अपनी कूटनीति या बहुत चतुराई से भी उस परम पिता को नहीं जान सकता । उसे जानने या प्राप्त करने का एक मात्र उपाय यही है कि गुरु की या प्रभु की आज्ञा का पालन किया जावे तभी प्राणी माया को जीत कर सचाई के दर्शन कर सकता है ।

प्रभोः प्रभावं दृढ़शासनस्य
को नाम धीरः कथितुं समर्थः ।
चर्कर्ति विश्वं प्रभुरेक एव
तिष्ठन्ति सर्वे च सुशासनेऽस्य ॥७॥

उस परमेश्वर के कठोर शासन के प्रभाव को कौन ऐसा धीर पुरुष है जो कहने में समर्थ हो । अर्थात् कोई भी वर्णन नहीं कर सकता—वह एक ही प्रभु समस्त संसार को बार-बार बनाता है, इसीलिए सब प्राणी (जड़ या चेतन) उसकी आज्ञा में ठहरते हैं

तस्यैव निर्देशलवप्रभावा-
ज्जीवो समेत्युत्तमनीचधाम ।
सुखं च दुःखं निजकर्मजन्यं
मानापमानौ लभते सदैव ॥८॥

उसी प्रभु की आज्ञा के इशारे मात्र से जीव को उत्तम वा नीच गति मिलती है—तथा वह प्राणी अपने कर्मानुसार सुख-दुःख मान वा अपमान को प्राप्त करता है ।

तस्यैव शिष्टेः भुवि बन्धमोक्षौ
स्थितं हि सर्वं खलु तस्य राज्ये ।
यः साधु जानाति गुरोरनुज्ञां ।
त्यक्ताभिमानं स समेति मुक्तिम् ।।९।।

उसी प्रभु की आज्ञा से जीव को बन्धन या मोक्ष मिलते हैं सब प्राणी उसी के राज्य में वर्तमान हैं जो गुरु की आज्ञा को ठीक जानता है वही अभिमान को छोड़कर (जन्म मरण से) मुक्ति को प्राप्त करता है ।

स शक्तिरूपो बलिभिर्निरुक्तः
प्रदातृरूपेण च कैश्चिदुक्तः ।
गायन्ति तस्यैव गुणांश्च केचि-
न्निगूढशास्त्रैरपरे वदन्ति ।।१०।।

बलवानों ने उसे शक्ति का रूप कहा है—और कई लोग उसे दाता कहते हैं—कोई उसके गुणों का गान करते हैं—कई गूढ शास्त्रों द्वारा उसका प्रतिपादन करते हैं ।

नोट—गीता में भी कहा है—'बलं बलवतां चाहं'—७/११

सृष्ट्वा शरीरं स निहन्ति पश्चाद्
ददाति जीवाय नवं वपुश्च ।
परात्परं तं निगदन्ति केचित्
प्रत्यक्षमेवेत्यपरे वदन्ति ।।११।।

वह परमेश्वर ही शरीर बनाकर, फिर उसे नष्ट कर देता है और जीव के लिये फिर नया शरीर प्रदान करता है। कई (ऋषि) उसे परे कहते हैं—और कई उसे प्रत्यक्ष (देखकर) सदा सामने ही मानते हैं। इस प्रकार वह प्रभु अपने विचित्र कार्यों से विचित्र रूप धारण करता है कठोपनिषद् में कहा है—

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।"

कठो० १/२/२०

और देखिए गीताः—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

—गी०—१३/१५

स्तवैरनेकैरपि कोटिभिश्च
बोद्धुं न शक्यो महिमा विधातुः ।
न सैष दाता भजते विरामं
तद् याचितारो विरमन्त्यनेके ॥१२॥

इस प्रकार अनेक क्रोड़ स्तोत्रों से भी उस विधाता की महिमा नहीं जानी जा सकती। यह ऐसा दाता है कि देता-२ थकता नहीं है पर मांगने वाले संसारी (जीव) लेते-२ थक जाते हैं।

युगादिकालाच्च युगान्तकालं
गृह्णन्ति सर्वे प्रभुणैव दत्तम् ।
बर्भांति विश्वं निजसम्पदैषः
सदा प्रसन्नः बलमहीन ईशः ॥१३॥

सृष्टि के आदि काल से लेकर युग युगान्तर तक सभी प्राणी उसी परमेश्वर का दिया हुआ ग्रहण करते हैं—वह प्रभु अपनी (दिव्य) सम्पत्ति (शक्ति) से संसार का भरण पोषण करता है, फिर भी सदा प्रसन्न रहता है एवं उसे किसी प्रकार का श्रम या कष्ट अनुभव नहीं होता—(वह स्वाभाविक रीति से अपने बनाए हुए जीवों का पालन करता है)।

गीता में भी यही भाव देखिए—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

—गीता–६/१८

स सत्यरूपो दृढ़शासनश्च
भाषा च तस्मै प्रियभक्तिरेव ।
"देहि प्रभो ! वैभवमुत्तमं मे"
यो याचतीत्थं स ददाति तस्मै ॥१४॥

वह प्रभु सत्य रूप है तथा उसका शासन बड़ा दृढ़ है उसके साथ बात करने के लिए कोई विशेष भाषा निश्चित नहीं—केवल सच्ची भक्ति ही उसकी भाषा है । अर्थात् वह सच्ची भक्ति श्रद्धा से ही प्राप्त हो सकता है, भाषा चाहे टूटी फूटी कैसी भी हो वह उसी को प्रमाण मान लेता है, तथा जो भी उस प्रभु से उत्तम वैभव मांगता है—वह उसे सब कुछ दे देता है । उपनिषद् में कहा भी है—

"सत्यमीशंमनन्तं ब्रह्म"—

किं नाम नैवेद्यपदेन देयं
येन प्रभोर्धाम लभेय शीघ्रम् ।
भक्त्या प्रपूर्ण वचनं च किं तत्
येन प्रयुक्तेन गुरुः प्रसीदेत् ॥१५॥

वह कौनसी वस्तु है जो प्रभु को निवेदन की जावे, जिससे उसका धाम-पद शीघ्र ही हमें मिल जावे । वह भक्ति भरा कौनसा वचन है । जिससे वह प्रभु, गुरु प्रसन्न हो जावे ।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते हरिरेव चिन्त्यो
गेयञ्च तस्यैव सदा महत्त्वम् ।
सकामकामी लभते शरीरं
मोक्षञ्च सर्वेशकृपाप्रभावात् ॥१६॥

ब्राह्म मुहूर्त्त में (प्रातःकाल) हरि का चिन्तन करना चाहिए—और सदा उसी की महिमा गानी चाहिए। फल की इच्छा से काम करने वाला पुन-२ शरीर के बन्धन में फंसता है। मोक्ष तो उस परमेश्वर की कृपा के फल स्वरूप ही मिलता है। गीता में कहा है,

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"

गीता—२/४७

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्,

गीता—२/४३

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

—गी० १८/६६

स्थाप्यो न मूर्त्या न च कार्य एषः
स सत्स्वरूपः प्रभुरेक एव।
स्वयंप्रकाशो नवभक्तिलभ्यो
गुणाश्च तस्यैव सदानुगेयाः ॥१७॥

वह सर्वव्यापक विभु एक मूर्ति या पिण्ड में स्थापित या बन्द नहीं किया जा सकता और उसका बनाने वाला कोई नहीं है वह सच्चिदानन्द रूप प्रभु एक मात्र स्वयं ही है—जो अपनी ही ज्योति से प्रकाशित है वह नवधा भक्ति या नए-२ भावों से भरी भक्ति से मिलता है अतः उसी के गुण सदा गाने चाहिएं।

स एव कीर्त्यः श्रुतिगम्य एषो
भावैरनन्यैः हृदि भावनीयः ।
तीर्त्वा त्रितापाब्धिमहोर्मिजालं
जनः सदानन्दतटं प्रयाति ॥१८॥

उसी परमेश्वर का कीर्तन करना चाहिये, वेदों द्वारा उसी का विचार होता है उसी का हृदय में शुद्ध भावों द्वारा चिन्तन करना चाहिए तीन ताप रूपी समुद्र की बड़ी लहरों के समूह को पार करके मनुष्य (इसी परमेश्वर के चिन्तन से) सदा आनन्द रूपी तट को प्राप्त करता है ।

नोट—उपनिषद् वचन भी देखिए :—

"तरति शोकमात्मवित्"—छान्दो० उ० ७/१/३
"निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते"—के० उ० १/३/१५

ईशो गुरु र्ब्रह्मपदेन बोध्यो
लक्ष्मी शिवासौ स च योगिराजः ।
अव्यक्तनादः सकलाश्च वेदाः
तिष्ठन्ति सर्वे गुरुवाचि नित्यम् ॥१९॥

वह गुरु ही ईश है, वही ब्रह्म है, लक्ष्मी, पार्वती तथा योगियों के राजा अव्यक्त नाम भी वही है । सभी वेद उसी गुरु की वाणि में ठहरते हैं ।

नोट—ऋग्वेद में कहा है :—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥"

—ऋक् १/१६४/४६

परमात्मतत्त्वं यदि नाम जाने
वक्ष्यामि तन्नाकथनीयमेषः ।
वरं प्रदेहि प्रियमद्य मे भोः
न विस्मरेयं प्रभुमीदृशं त्वाम् ॥२०॥

यदि मैं उस परमात्मा के तत्त्व को या निर्देश को किसी प्रकार जान भी लूं (अर्थात् उस प्रभु के यदि दर्शन हों जावें) तो मैं उस को नहीं कहूँगा क्योंकि वह तो सर्वथा अकथनीय है—कहने से परे है । हे गुरो ! आप हमें यह वर दो, कि मैं आपको कभी भी न भूलूं ।

स्नास्यामि तीर्थे यदि स प्रसीदे
न्न तद् विना मे रुचिरस्ति सापि ।
किं लभ्यते स्वल्पमपीह जातु
प्रभोः कृपां प्राप्य विनैव लोकैः ॥२१॥

पुण्य तीर्थों में मैं तभी स्नान करूँगा, कि यदि उस प्रभु को यह अच्छा लगे उसकी इच्छा के बिना मेरी (तीर्थ स्नान करने की भी रुचि नहीं है) क्योंकि प्रभु कृपा के बिना कभी कुछ नहीं मिलता । अर्थात् हृदय शुद्धि के बिना तीर्थ स्नानादि से कोई लाभ नहीं है प्रभु की प्रसन्नता और कृपा ही सर्वोपरि है ।

गुरूपदेशस्य विधेर्विधानात्
गुणा विशिष्टा धियमाभजन्ते ।
महार्घ्यरत्नाधिकनामरत्नं
न विस्मरेयं हरिनामरत्नम् ॥२२॥

गुरूपदेश की महिमा से प्राणी की बुद्धि में विशेष गुण आ जाते हैं (अतः

मेरी प्रार्थना यही है) कि बहुमूल्य रत्नों से भी अधिक मूल्यवान हरि नाम रूपी रत्न को मैं कभी भी न भूलूं ।

कल्पान्तपर्य्यन्तमिहायुषा किं ?
कीर्त्या च लोके सकलेऽपि किं वा ?
दासा जनास्ते बहवस्ततः किं ?
प्रियोऽसि नाम्ना यदि ते किमर्थम् ॥२३॥

यदि कल्प के अन्त तक भी आयु लम्बी हो जावे तो क्या लाभ ? समस्त संसार में यश फैल जावे तो क्या ? यदि तुम्हारे बहुत से नौकर चाकर यो जावे तो क्या ? और यदि तुम्हारा नाम बहुत प्यारा हो तो भी क्या प्रयोजन ?

गुरुप्रसादं तु विना मनुष्य-
स्तुच्छायते कीट इवात्र लोके ।
दाता गुणानां हि गुणागुणेभ्यः
कोऽन्योऽस्ति लोके कविवद् गुणज्ञः ॥२४॥

वास्तव में गुरु कृपा के बिना मनुष्य कीड़े, मकौड़े के समान लोक में तुच्छ बन जाता है गुण और दोषों में से गुणों को देने वाला एवं गुणों को जानने वाला कवि के समान ब्रह्मा, अकाल पुरुष के अतिरिक्त और कौन हो सकता है। वह निर्गुणियों को भी गुण देता है तथा गुणियों के गुणों की वृद्धि करता है कवि पक्ष में इसका अर्थ यूं होगा, गौरव युक्त प्रसाद गुण के बिना कवि कीट की भाँति तुच्छ गिना जायेगा (जिस कवि की कृति में प्रसाद गुण नहीं होता वह अधम कवि कहलाता है) क्योंकि अच्छे गुणों को जानने वाला ही अच्छा कवि कहलाता है। वही अपने काव्य में दोषों को ठीक २ जानकर दोषों से बचता है तथा गुणों का आधान करता है ।

सिद्धा मुनीन्द्राः सकलाश्च देवाः
योगीश्वरा यक्षसुरादिलोकाः ।
द्यावा पृथिव्यौ भुवनत्रयञ्च
नाम्नः प्रभावाद् वशतां प्रयान्ति ।।२५।।

सिद्ध मुनीन्द्र-सभी देवता योगीश्वर यक्ष लोक देवलोक पृथ्वी, आकाश और तीनों लोक ये सभी एक हरि के प्रभाव से वश में हो जाते हैं अर्थात् हरि नाम की महिमा से इन सभी वस्तुओं को प्राणी भली भाँति जानकर इनको वश में कर लेता है ।

क्व कालपाशाः क्व च पापतापाः
नाम्नः प्रभोः विभ्यति भीतभीताः ।
भक्ताः पुनस्तस्य तु नामलाभात्
भयाद् विमुक्ता मुदमेधयन्ते ।।२६।।

परमेश्वर के नाम के आगे यमराज के पाश (फाँसी) या पाप की पीड़ाएँ नहीं ठहरती-वह भयभीत होकर डरी रहती हैं किन्तु प्रभु के भक्त अपने प्रभु के नाम के प्रभाव से ही निर्भय होकर सदा प्रसन्न रहते हैं (उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता) ।

ईशस्वयंभूमघवादिकानां
श्रुतेः स्मृतेः योगविधेश्च भेंदान् ।
मन्दोऽपि जानाति गुरोः प्रभावा
न्निहत्य पापं समुपैति हर्षम् ।।२७।।

(बुद्धिमान् पुरुष की तो क्या बात है) मूढ़ पुरुष भी गुरु की कृपा से ईश्वर, ब्रह्मा, इन्द्र, वेद, स्मृति तथा योग के सभी भेदों को जान लेता है और वह पाप को पार करके सदा शाश्वत हर्ष को प्राप्त कर लेता है ।

परात्मतत्त्वं शिवसत्यमूलं
ज्ञानञ्च सन्तोषपरञ्च मानम् ।
ध्यानञ्च तीर्थादिषु पुण्यलाभं
नाम्नो महिम्नः समुपैति भक्तः ॥२८॥

हरि नाम की महिमा से भक्त उस परब्रह्म के तत्त्व सत्य का भूल शिव, ज्ञान, सन्तोष, मान, बड़ाई, ध्यान, तीर्थादि में स्नान करने का पुण्य लाभ यह सभी कुछ प्राप्त कर लेता है ।

पदं महाचार्य्यनृपोत्तमानां
गुणाश्च हृद्याः सुलभा भवन्ति ।
अन्धोऽपि सन्मार्गदिशा प्रयाति
नाम्नो महत्त्वं कथितुं क्व शक्यम् ॥२९॥

नाम की महिमा से, बड़े आचार्य वा राजा महाराजा का पद तथा मनोहारी गुण भी प्राप्त हो जाते हैं अन्धा प्राणी भी ठीक मार्ग पर चलने लगता है । नाम का महत्त्व कौन कह सकता है ।

संसारसिन्धुं विपदूर्मिघोरं
तरत्यसौ गोपदवत्सलीलम् ।
पापो वराको हि कथं स्पृशेत्तं
सुखोपविष्टं हरिनामभक्तम् ॥३०॥

ऐसा हरि का भक्त विपत्ति रूपी लहरों से भयङ्कर, संसार रूपी समुद्र को गौ के पैर के आकार के समान बड़ी आसानी से पार कर लेता है । इस प्रकार

सुख पूर्वक बैठे हरि नाम के भक्त को बेचारा पाप कैसे छू भी सकता है। अर्थात् पाप उसके निकट फटक भी नहीं सकता।

नोट—उपनिषत्साहित्य भी यही कहता है—

(i) तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन —बृ० उ० ४/४/२३

(ii) तरतिशाकेमात्मवित् —छा० उ० ७/१/३

(iii) निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते —क० उ० १/३/१५

(iv) अपहत्य पापमानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति —के० उ० ४/९

(v) अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः—गीता १८-६६

प्रभोः सुनाम्नो मननं विधेयं
को नाम शक्तः कथनेऽस्य मूल्यम्।
न लेखलेख्यं न विचारचिन्त्यं
तन्नाम शुद्धं मनसैकलभ्यम् ॥३१॥

प्रभु का नाम सदा मनन करना चाहिए, नाम के महत्त्व को कोई नहीं कह सकता यह लेखनी द्वारा लिखा नहीं जा सकता, विचारों द्वारा सोचा नहीं जा सकता, वह प्रभु का शुद्ध नाम केवल मन द्वारा ही चिन्तन करके प्राप्त किया जा सकता है।

जागर्ति बुद्धिः शुचमेति चेतो
नाम्नः प्रसादात्सुलभास्त्रिलोकाः।
यमस्य पीडाऽपि न बाधतेऽहो
तन्नाम शुभ्रं मनसैकवेद्यम् ॥३२॥

हरि नाम की महिमा से बुद्धि जागृत होती है, चित्त शुद्ध होता है, तीनों

लोक सुलभ हो जाते हैं, नाम के जपने वाले को यम की पीड़ा भी नहीं सताती ऐसा यह नाम शुद्ध है जो मन द्वारा ही जानने योग्य है ।

निर्बाधमध्यात्मपथानुगच्छन्
हरस्य भक्तः प्रजपन् गुणांश्च ।
विहायधर्मान् विविधांश्च लोके
प्रभोः दयालोः शरणं प्रयाति ॥३३॥

हरि का भक्त, अध्यात्म मार्ग से चलता हुआ, उसके गुणों को गाता हुआ, इस संसार में सभी धर्मों (आशयों) को छोड़कर उस दयालु प्रभु की शरण में जाता है ।

गीता में कहा है :—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः । गीता । (१८/६६)

नाम्नस्तरण्या सुतरन् भवाब्धि
लोकाँस्तथा तारयते सुभक्तः ।
का नाम भिक्षा स तु मोक्षदाता
चित्तैकवेद्यं शिवमेति शुद्धम् ॥३४॥

वह हरिभक्त नाम रूपी नौका से संसार रूपी समुद्र को पार करता हुआ, लोकों को भी पार कर देता है । उसके लिए भिक्षा क्या, वह तो दूसरों को मोक्ष देने वाला हो जाता है—इस प्रकार कल्याण कारी प्रभु परमेश्वर, केवल चित्त से ही जाना जाता है । वह नित्य शुद्ध-बुद्ध स्वरूप है' जिसे वह पा लेता है ।

स एव मुख्यः स च पूजनीयः
प्रभोः समक्षं स हि शोभनीयः ।
समादृतोऽसौ भुवि भूमिपालैः
ब्रह्मैकतत्त्वं भजते सदा यः ॥३५॥

जो ब्रह्म के तत्त्व को सदा भजता है वही मुख्य है, वही पूज्य है भगवान के सामने वही शोभा देता है । इस लोक में वह राजाओं द्वारा भी वन्दनीय बन जाता है ।

अनन्तपारः प्रभुशक्तिसारो
बोद्धुं न शक्यो जगतश्च भेदः ।
विभोर्दयोत्थो वृषभश्च धर्मः
सन्तोषसूत्रैः नियमेषु धत्ते ॥३६॥

प्रभु की शक्ति का सार—जिसका कोई पार नहीं है, तथा जगत के भेद को कोई नहीं जान सकता । परमेश्वर की दया से उत्पन्न धर्मरूपी वृषभ-(बैल) सन्तोषरूपी सूत्रों से अपने-अपने नियमों में बँधा रहता है ।

पृथ्वीं विधत्ते वृषभः किमेको ?
भूम्यो ह्यनन्ता जगतीति बोध्यम् ।
एकोऽद्वितीयः प्रभुरेव लोकान्
सर्वान् बिभर्तीति सुनिश्चितं तत् ॥३७॥

क्या पृथ्वी को एक ही बैल धारण करता है संसार में तो अनेक पृथिवियाँ तो एक बैल उन सबको कैसे धारण कर सकता है ?

इसके उत्तर में कहते हैं—कि वह परमेश्वर ही है जिसकी और कोई उपमा नहीं है वह अकेला ही समस्त लोकों को धारण करता है—यह बात निश्चित समझनी चाहिये ॥

अनन्तशक्ती रमणीयरूपः
एको हि दाता सकलेष्टसिद्धेः ।
शब्दात्मनस्तस्य विभोः प्रसारं
चराचरं सर्वमिदं जगत्सु ॥३८॥

वह परमेश्वर अपार शक्ति वाला है उसका सुन्दर रूप है सभी की इष्ट सिद्धि करने वाला है । शब्द-रूप उस प्रभु का ही यह जड़-चेतन जगत प्रसार रूप है । अर्थात् इस संसार में जो भी चराचर है वह सब प्रभु का ही विस्तार है—

ईशोपनिषद देखिये—"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यांजगत्

—ईशोप १/१

नोट—यहाँ पर शब्दरूप ब्रह्म से काव्य की भी ध्वनि निकलती है और शेष सभी विशेषण काव्य पक्ष में भी घटित होते हैं ।

अगम्यरूपा प्रकृतिश्च तस्य
तत्प्रीतये सर्वमपि प्रदास्ये ।
तास्यैकबन्धो वचनं करिष्ये
नित्यः स एवैकरसश्च लोके ॥३९॥

उसी परमेश्वर की अङ्गभूत तथा अगम्यरूप प्रकृति भी है—उस प्रभु की प्रसन्नता के लिये मैं सभी कुछ दूंगा । उसी एकमात्र सच्चे बन्धु की आज्ञा पालन करूँगा क्योंकि वही हरि नित्यस्वरूप, वा एकरस है ।

नोट—देखिये गीता—"नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः"

—गीता-२/२४

स जप्यते भक्तजनैरसंख्यैः ।
प्रपूजकैश्चापि तपस्विसंघैः ।
संस्तूयमानो निगमागमैश्च
योगक्रियाभिर्जयति त्रिलोके ॥४०॥

वही प्रभु असंख्य भक्तों द्वारा जपा जाता है तथा पुजारियों तपस्वियों द्वारा वेदशास्त्रों से गाया जाया है और योगी लोग, अपनी यौगिक क्रियाओं से उसे भजते हैं। तीनों लोकों में उसी की जय-जयकार होती है।

असंख्यशूरैरस्तत एष लोको
ध्यायन्ति मौनं मुनयो ह्यनन्ताः ।
पारं क्व यातुं जगतः समर्थो
बिर्भति विश्वं प्रभुरेक एव ॥४१॥

यह संसार असंख्य शूरों से भरा पड़ा है, अनेक मुनि लोग उस प्रभु को मौन रखकर ध्याते हैं, इस जगत का कोई पारावार नहीं पा सकता। वह एक ही परमेश्वर इस समस्त संसार का भरण-पोषण करता है।

नोट—गीता देखिये—

"तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्" —गीता ९/२२

"भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः"—९/५

वसन्ति लोकेऽप्यतिनीचवृत्ता
श्चौराः खला लोलुपमानसाश्च ।
अज्ञानतामिस्त्रविलुप्तमार्गाः
कुशासका दीनजनाँस्तुदन्ति ॥४२॥

इस संसार में बहुत नीच वृत्ति वाले, लोग चोर, दुष्ट, लोभी मन वाले, रहते हैं तथा अज्ञानरूपी अन्धकार से जिनका मार्ग विलुप्त हो गया है—वे दुष्ट शासक बनकर, दीन-दुःखियों को तंग करते तथा सताते हैं।

पापाः प्रदुष्टा विषमाचरन्ति
निन्दन्ति साधूँश्च लुठन्ति लोकान् ।
दीनोऽप्यहंतान् कथितुं न शक्यः
सर्वेश्वरोऽसौ हरिरेव शक्तः ॥४३॥

दुष्ट पापी जीव, संसार में विरुद्ध आचरण करते हैं, साधुओं की निन्दा करते हैं, लोगों को लूटते हैं। मैं स्वयं भी दीन होता हुआ उनका वर्णन नहीं कर सकता; केवल सर्वज्ञ, सब का स्वामी हरि ही एक सर्वथा समर्थ है।

अनेकजीवा विविधाश्च लोकाः
नालं हि तेषां जणनाय कोऽपि ।
तथापि शब्दैरभिधीयतेऽत्र
शब्देष्वधीनं स्तुतिकीर्तनञ्च ॥४४॥

इस लोक में अनेक जीव हैं, अनेक प्रकार के लोग हैं, उनकी गिनती कोई भी नहीं कर सकता। फिर भी शब्दों से कुछ कहा जाता है क्योंकि प्रभु की स्तुति तथा कीर्तन भी तो शब्दों द्वारा ही होती है।

गुणानुगानं हरिचिन्तनञ्च
ज्ञानञ्च सर्वं श्रुतिदर्शनानाम्।
भाग्याभिलेखोऽपि ललाटमध्ये
शब्दाश्रितं सर्वमिदं नु विद्धि ॥४५॥

भगवान् का गुणानुवाद, चिन्तन, वेदशास्त्रों का ज्ञान, मस्तक में विधाता का लिखा-लेख,—यह सभी कुछ शब्दों द्वारा ही तो लिपिबद्ध किया जाता है, अतः शब्द की महत्ता निर्विवाद है ।

नोट—वैयाकरणी शब्द को ही ब्रह्म एवं नित्य मानते है—

स्वतंत्रकर्त्ता स विधेर्विधाता
कर्मानुसारञ्च फलप्रदाता ।
तन्नाम चिन्त्यं करणं शुभानां
तस्यैव भासा च विभाति सर्वम् ॥४६॥

वही भाग्य का विधाता प्रभु स्वतंत्र कर्ता है—जीवों को उनके कर्मानुसार फल देता है—उसी का नाम चिन्तन करना चाहिए—क्योंकि वही शुभ वस्तुओं का मूल कारण है—उसी के प्रकाश से सारा विश्व प्रकाशित है ।

नोट—इस श्लोक में कर्ता, कर्म-करणादि शब्द व्याकरण शास्त्र में प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द है—तथा–'**स्वतंत्रः कर्ता**' पाणिनी का सूत्र है कर्ता स्वतंत्र होता है—कर्म वह होता है जिसपर क्रिया का फल पड़े–तथा करण साधन होता है–यहां भी क्रमशः ये शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं–अतः यहां शब्दों का चमत्कार है ।

न कोऽपि विज्ञो न विचक्षणो वा
पारं प्रयाति प्रकृतेश्च तस्य ।
शब्दात्मकः प्रत्ययमात्रबोध्यः
स निर्विकारी हरिरेक ईड्यः ॥४७॥

उस परमेश्वर की प्रकृति (स्वभाव) का कोई भी पार नहीं पा सकता वह चाहे कितना ही ज्ञानी वा चतुर क्यों न हो । वह प्रभु शब्द-रूप है केवल प्रत्यय

विश्वास से ही जानने योग्य है वह विकार रहित, एक ही हरि स्तुति करने योग्य है ।

नोट—यहां भी प्रकृति, प्रत्यय, शब्द, निर्विकारी अर्थात् अव्यय ये सभी शब्द व्याकरण परक है–पर यहां इनका दूसरा अर्थ करने से श्लोक की संगति ठीक बैठती है यथा प्रकृति का स्वभाव, प्रत्यय का विश्वास शब्द का शब्द-ब्रह्म, निर्विकारी का विकाररहित-अर्थ किए जाते हैं ।

गीता देखिए—'अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते'

—गीता–२/२५

वपुश्च वस्त्रं जलमात्रशोध्यं
पापा तु बुद्धिः हरिनामशोध्या ।
सकामकृत्यैः स च बन्धमेति
फलानि भुंक्ते निजकर्मजानि ॥४८॥

शरीर और वस्त्र तो केवल जल से ही शुद्ध हो जाते हैं, किन्तु पापी, मलिन बुद्धि तो हरि के नाम से ही शुद्ध होती है–जीव सकाम कर्म करने से जन्म-मरण के बन्धन में फंसता है और अपने किए कर्मों का फल भोगता है ।

विवन्दनीयो हरिरेव तस्मान्
निष्कामकृत्यैश्च सदोपकारैः ।
तस्यैव शिष्टेः नटसन्निकाशं
संसाररंगस्थलमेति जीवः ॥४९॥

अतः निष्काम कर्मों द्वारा, तथा उपकारों द्वारा, सदा परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए क्योंकि उसी की आज्ञा से जीव इस संसार रूपी रंगमञ्च पर आता है (जैसे सूत्रधार की आज्ञा से नट)

देखिए गीता—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

मा कर्म फलाहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वं कर्मणि, गीता–२/४७

"सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः—गी० १८/२

ईशावास्यमिदं 'सर्वं' यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।
—ईशोप १/१

तीर्थादिषु स्नानतपोभिरत्र
दानैर्महार्घ्यैरपि नास्ति कार्यम् ।
स्नानीयपुण्यं हरिनामतीर्थं
सदैव शुद्धं सुधिभिर्निषेव्यम् ॥५०॥

तीर्थों पर स्नान, तप, उत्तम दानादि से भी कोई अर्थ नहीं सिद्ध होता— हरि का नाम ही केवल स्नान करने योगय पुण्य तीर्थ है—वही शुद्ध है। बुद्धिमानों द्वारा उसी का सेवन करना चाहिए।

गुणो न भक्तिः शिवतोषणे मे
सर्वे गुणाः शङ्करमाश्रयन्ते ।
निदेशतो यस्य जगत्प्रसारः
सत्यं शिवं सुन्दरमस्ति सोऽसौ ॥५१॥

उस कल्याण कर्ता शिव के प्रसन्न करने में मुझ में न कोई गुण है और न भक्ति। सभी गुण तो उसी परम-कल्याणकारी परमेश्वर में है जिसकी आज्ञा मात्र से यह सारा संसार बना है वही सत्यं शिवं सुन्दरं है, अर्थात्—वही प्रभु सच्चा, कल्याणकारी तथा सुन्दरता का स्वरूप है।

ऋतौ च कस्मिन् दिवसेऽथ मासे
सृष्टं कदा विश्वमिदं विधात्रा ।
योगी न भोगी न च पण्डितो वा
यक्षो न दक्षः कथितुं समर्थः ॥५२॥

उस परमेश्वर ने किस ऋतु, दिन या महीने में यह संसार रचा, इसे कोई भी योगी या भोगी, या पण्डित-या यक्ष या कोई भी चतुर आदमी नहीं कह सकता। नोट—वेद भी कहता है—

"सूर्यचन्द्रमसौधाता" यथा पूर्वमकल्पयत' ऋक्—मं० १० सू० १९० मं०—३

सृष्टि के आदि और अन्त का कुछ पता नहीं—उस प्रभु न यथा पूर्व ही इसकी रचना की—बस इतना ही कहा जा सकता है।

पुराणलभ्यं न कुराणलभ्यं
रहस्यमेतन्निहितं कुतश्चित्।
ज्ञाता प्रभुस्त्वेव जगद्विधाता
सर्वेश्वरोऽसौ जयति त्रिलोके ॥५३॥

इस संसार का बनने का रहस्य न पुराणों में है और न कुरान में है—न जाने कहां छिपा है वही प्रभु जानने वाला है जो संसार का कर्त्ता है सब का स्वामी है उसी की तीनों लोकों में जय जयकार होती है।

अनन्तपातालमनन्तमभ्र-
मनन्तविश्वं हरिरप्यनन्तः।
नेतीति वेदा बहुधा वदन्ति
स्वयं विजानाति हरिः स्वसारम् ॥५४॥

इस विश्व में अनन्त पाताल हैं असंख्य आकाश है विश्व भी अनन्त है—हरि भी अनन्त है—वेद भी उसके विषय में 'नेति नेति' कहते है—प्रभु अपने सार की स्वयं ही जानता है और कोई नहीं जानता।

नोट—गीता में कहा है—"वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।"

—गी०—११/३८

कामं स्रवन्त्यो निलयन्तु सिन्धौ
भेदं पुनश्चास्य न संविदन्ति ।
एवं निलीना अपि शङ्कराब्धौ
प्रयान्ति भक्ता न हि तस्य पारम् ॥५५॥

नदियाँ चाहे समुद्र में स्वेच्छया मिल जावें पर उसका भेद नहीं जान सकती इसी प्रकार कल्याणकारी प्रभु शङ्कर अकाल पुरुष के भक्क चाहे उसके चरणों में विलीन हो जावें —पच उसके पार को नहीं पा सकते ।

क्षुद्रोऽपि खेटो गुरुशक्तियोगा
ल्लोकोत्तरानन्दतति दधाति ।
तच्छक्तिहीनान् बहुकाव्यराजान्
विशालकायान् हसतीव चित्रान् ॥५६॥

(i) छोटा जीव भी अपने पूज्य गुरु महाराज की शक्ति से (या भक्ति से) अद्‌भुत आनन्द धारण करता है या अद्‌भुत कार्य कर जाता है और उस शक्ति से हीन जो बड़ें २ राजे महाराजे भी है उन्हें भी वह छोटा सा होकार भी मज़ाक करता है ।

(ii) **काव्य पक्ष में**—"रवे अटतीति खेटः शब्दः !" इस व्युत्पत्ति से **रवेट** का अर्थ शब्द होता है वह छोटा सा शब्द भी अपनी बड़ी शक्ति के द्वारा (लक्षणा या व्यञ्जना) से लोकोत्तर चमत्कार पैदा करता है इसी लिए वह अन्य बड़े काव्यों की भी हंसी उड़ाता है जिन में वह शक्ति नहीं हैं बह बड़े भी हो-उन्हें यह छोटा काव्य भी हंसता सा है क्योकि उनकी संज्ञा **चित्र** काव्य होती है जो **अधम** काव्य कहलाता है ।

(iii) **रवेट** का अर्थ ग्रह भी होता है—वह भी गुरु-बृहस्पति के **योग** से विचित्र फल का देने वाला होता है यह ज्यौतिष शास्त्र में प्रसिद्ध है ।

इस प्रकार इस श्लोक में रवेट, गुरु आदि शब्दों के चमत्कार से तीन अर्थ

निकलते हैं जिनमें प्रस्तुत अर्थ जीव का है जो वाच्य है शेष अर्थ व्यङ्ग्य है ॥

न चायमीशः स्तुतिगीतकैर्वा
दानैर्न सत्कर्मविधानकैर्वा ।
न चैष लभ्यो वचनैः पटिष्ठैः
श्रुतैश्च दीर्घैः भ्रमणै र्बहुत्र ॥५७॥

यह परमेश्वर स्तोत्रों से या गीतों से, बहुत दान से या अच्छेकर्म या विधानों से नहीं मिलता और न ही यह चतुर वचनों से न वेदाध्ययन से, या दूर दूर घूमने से भी नहीं मिलता ।

गीता में भी कहा है—"नाहं वेदैर्नतपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा" ॥
गीता ११/५३

हरेण किं विश्वमिदं प्रणीतं
स कीदृशः किञ्च तथास्यमानम् ।
उच्चैस्तमं चास्य निवेशनञ्च
को नाम जानाति महत्तमं तम् ॥५८॥

क्या यह परमेश्वर ने सारा विश्व बनाया ?

वह कैसा है उसका मान कितना है ? उसके रहने का स्थान कितना ऊँचा है—इस प्रकार के रहस्य की बातें तथा उस महान को कौन जान सकता है ?

प्रभुः स एकः सकलान्तरात्मा
नादिर्न चान्तो भुविदृश्यतेऽस्य ।
ज्ञाता स्वयं स्वस्य च चित्रमेतत्
कृपाभरात्तस्य च लभ्यते श्रीः ॥५९॥

सारे विश्व का अन्तरात्मा, वह प्रभु एक ही है, इस संसार में उसका आदि वा अन्त नहीं दिखता। वह अपने आपका स्वयं ही ज्ञाता है यह बड़े आश्चर्य की बात है उसी की कृपा से जीव को लक्ष्मी-ऐश्वर्य्य मिलता है।

देखिए गीताः—"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"।

गीता—१०/४२

"नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप"। गीता—११/१६

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः—सर्वव्यापी सर्वं भूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।

श्वेत उ० ६/११

"निष्कामदातुः परमोपकर्तुः
प्रभोः कृपां कः कथितुं समर्थः।
याचन्ति योधाः करुणां तमेव
निकृष्टभोगेषु पतन्ति चान्ये" ॥६०॥

उस निःस्वार्थदाता, परमोपकारी प्रभु की कृपा को कौन कह सकता है—बड़े २ योधा उसीसे दया की भिक्षा मांगते हैं—दूसरे कितने ही उसी से मांगे हुए तुच्छ भागों में गिरपड़ते हैं।

केचित्कृतघ्ना भुवि भारभूता
अपार दुःखाम्बुधिमापतन्ति।
संसारबन्धस्य विधेर्विधाता
प्रभुस्ततो मोक्षमपीह धत्ते" ॥६१॥

कई लोग कृतघ्न होते हैं जो इस पृथ्वी पर भार ही है वे अगाध दुःख रूपी समुद्र में गिरते हैं वही प्रभु संसार में बन्धन देता है तथा स्वयं ही उस बन्धन से छुड़ाता है।

न्याय्यं हरे कर्म कृपापरस्य
न कोऽप्यलं तत्प्रसमीक्षणाय ।
दत्ते यमीशो हरिनामरत्नं
स एव धन्यः स च राजराजः ॥६२॥

उस कृपालु भगवान् के न्याय युक्त कर्म को कोई भी पहचान नहीं सकता—अर्थात् उसके भेद को नहीं जान सकता जिसको वह अपना नाम रूपी रत्न देता है वह वास्तव में धन्य है और वही राजाओं का राजा है ।

हरेः स्वभावो गुणकर्मणी वा
तन्नामरत्नं सकलं ह्यमूल्यम् ।
स्थिताः समाधौ सुविरक्तचित्ताः
धन्या जना ये प्रभुमाभजन्ते ॥६३॥

हरिका स्वभाव, उसके गुण वा कर्म, तथा उसका नामरूपी रत्न—ये सभी अमूल्य पदार्थ हैं । वास्तव में वे लोग धन्य हैं—जो समाधि में स्थित होकर, विरक्त मन से प्रभु का भजन करते हैं ।

विधे विधानं नयरक्षकस्य
लोकानुकम्पा करुणापरस्य ।
न्याय्यस्य मानञ्च सभास्यनीतेः
वैचित्र्ययुक्तं भुवि सर्वमस्य ॥६४॥

उस न्याय रक्षक का विधि विधान, दयालु भगवान की अकारण अनुकम्पा, उसके न्याय का मूल्य, उसकी नीति की सभा, इसकी ये सभी वस्तुएँ संसार में आश्चर्य पैदा करने वाली हैं ।

वेदाः समस्ताश्च पुराणवर्गाः
महर्षिसंघा मनुयश्च सिद्धाः ।
ब्रह्मा महेन्द्र, सगणो महेशः
सगोपगोविन्दहरिः स्वयञ्च ॥६५॥

सभी वेद, पुराण समूह, महर्षि गण, मुनि, सिद्धलोग, ब्रह्मा, महेन्द्र, अपने गणों सहित शिवजी, तथा अपने गवालों सहित भगवान् कृष्ण, स्वयं (उसी पर ब्रह्म परमेश्वर के गुण गाते हैं)

इस क्रिया का सम्बन्ध अगले श्लोक से है ।

सुरासुरा बुद्धजनाश्च लोके
गायन्ति तस्यैव गुणान् सहर्षम् ।
तथापि पारं न कदापि यान्ति
ब्रह्मैव जानाति सदा स्वतत्त्वम् ॥६६॥

सभी देवता या दानव, बुद्धिमान् लोग, उसी प्रभु परमेश्वर के गुण गाते हैं पर फिर भी उसका पार नहीं पाते ।

स्वयं अकाल पुरुष ही अपने गुप्त रहस्य को जानता है (और कोई नहीं) ।

द्वारं गृहं वा ननु कीदृशं ते
यत्र स्थितस्त्वं परिपासि विश्वम् ।
गन्धर्वसिद्धाः मधुवाद्ययंत्रैः
यत्रानुगायन्ति यशस्त्वदीयम् ॥६७॥

आपका घर वा द्वार कैसा होगा, जहाँ बैठकर आप संसार का पालन करते हो तथा जहाँ गन्धर्व वा सिद्ध लोग, कर्ण मीठे वाद्य यंत्रों से आपका यशोगान करते रहते हैं ।

वाताग्निदेवौ वरुणः शिवश्च
सचित्रगुप्तोऽपि यमः स्वयञ्च ।
सदेवदेवेन्द्रवरः शिवापि
ब्रह्मादिदेवाः प्रभुमास्तुवन्ति ॥६८॥

वायु, अग्नि, वरुण, शिव, चित्रगुप्त सहित स्वयं यमराज, देवताओं 'सहित' इन्द्रदेव, पार्वती माई तथा सभी ब्रह्मादि देवता उसी प्रभु की स्तुति करते हैं ।

सिद्धाः समाधौ यमिनो व्रतादौ
सत्याश्रिताः सत्यविधानकादौ ।
सन्तुष्टचित्ता बलवीर्यवन्तः
ऋषीश्वरा वेदविदाञ्च मुख्याः ॥६९॥

सिद्ध लोग समाधि में, संयम करने वाले व्रतादियों द्वारा, सत्यनिष्ठ महापुरुष सत्य के आचरण ये—सन्तोषी जीव, बल वा बीर्यशाली, ऋषीश्वर वेदज्ञों में मुख्य, (सभी उसी प्रभु की स्तुति करते हैं) इसका अगले श्लोक से सम्बन्ध है ।

चराचराः सर्वपदार्थवर्गा
गायन्ति मूकं स्तुतिमस्य नित्यम् ।
भक्तास्तु लोकेषु विशुद्धचित्तैः
गोविन्दभक्तेः रसमश्नुवन्ति ॥७०॥

चर वा अचर (जड़ चेतन) सभी पदार्थ समूह उसी प्रभु के गुण, मूक भाव से गाते हैं। भक्त लोग तो, अपने पवित्र हृदय से भगवान् की भक्ति का रस ही आस्वादन करते हैं ।

ब्रह्माण्डवृन्दा रविमण्डलानि
तमेव तीर्थानि च संस्तुवन्ति ।।
स्वर्गेऽप्सरोभिः श्रुतिरम्यगीतैः
जेगीयते नित्यमसौ स्वयंभूः ।।७१।।

सभी ब्रह्माण्ड, सूर्य मण्डल तथा सभी तीर्थ उसी प्रभु की स्तुति करते हैं—स्वर्ग में अप्सराएं, कानों को लुभाने वाले गीतों से उसी स्वयंभू परमेश्वर की पुनः २ स्तुति करती हैं ।

स नित्यशुद्धः प्रभुशाश्वतैकः
सर्वेश्वरः सर्वजगन्नियन्ता ।
विरच्य विश्वं स विभर्ति चैन
माज्ञा च तस्यैव सुपालनीया ।।७२।।

वही नित्य शुद्ध बुद्धास्वरूप नित्य चिरन्तन, परमेश्वर, सबका स्वामी, तथा जगत का नियामक सारे संसार को बनाकर फिर उसका पालन भी करता है—अतः उसी की आज्ञा पालन करनी चाहिये ।।

सन्तोषरत्नं नवकुण्डलं स्यात्
श्रमश्चभिक्षाटनपात्रमेव ।
कन्या तु पापैश्च वियुक्तचित्तं
ध्यानं रजः प्रत्ययमेव दण्डम् ।।७३।।

नोट :—वाम पथियों के मार्ग का वर्णन तथा खण्डन करते हैं :—
सन्तोषरूपी रत्न ही नए कुण्डल हैं ।
परिश्रम करना ही, भिक्षा मांगने का पात्र है ।

पापों से विरक्त चित्त ही कँवारी कन्या है ।

प्रभु का ध्यान ही धूलि या भस्म है ।

प्रभु पर अटूट विश्वास ही दण्ड होना चाहिए ।

यहां वाम मार्गियों की पाँच बाहरी दिखावे की वस्तुओं के स्थान पर श्रमादि पाँच शुद्ध वस्तुओं का वर्णन है ।

"गुणाः पूजा स्थान, गुणिषु न च लिङ्ग न च वयः ॥"

—उ० रा० चरित ४/११

एते गुणास्ते यदि संयुताः स्युः
जेतासि विश्वञ्च विजित्य चित्तम् ।
अनादिसत्त्वश्च सदैकरूपो
वन्द्यः स एकः प्रभुरस्ति लोके ॥ ७४ ॥

इस प्रकार के गुण यदि तुम्हारे में युक्त हों (पूर्वोक्त शुद्ध नियमों का पालन करने वाले) तो तुम अपने चित्त को जीतकर जगत् को भी जीत लोगे क्योंकि वह एक ही प्रभु इस लोक में है जो अनादि तत्त्व हैं सदा एक रूप है तथा सभी का वन्दनीय है (उसी की कृपा से मन वश में हो सकता है ।)

तस्यैव कारुण्यपयोधिपूरा-
दध्यात्मबोधस्तरुवत्सुपोष्यः ।
अन्तर्मुखीभूय च नादमेतं
शृणुश्व नित्यं निनदन्तमन्तः ॥ ७५ ॥

उसी परमेश्वर की कृपा रूपी समुद्र से अध्यातम ज्ञान रूपी वृक्ष का पालन-पोषन करना चाहिए—सदा अन्तर्मुखी होकर, अपने ही भीतर नित्य गूंज रहे शब्द को सुनना चाहिए । वही शब्द अनहद नाद ही वह उसी प्रभु को सङ्केत करने वाला है ।)

परात्परेशः स परात्मयोगी
तस्यैव शिष्टेश्च वियोगयोगौ ।
योगाष्टसिद्धेर्न निकृष्टमन्यत्
तन्नामरत्नान्न वरिष्ठमन्यत् ॥ ७६ ॥

वह ईश्वर परे से परे वा ऊँचे से ऊँचा योगी है उसी की आज्ञा से संसार में संयोग-वियोग होते हैं योग की आठ सिद्धियों से घटकर कोई तुच्छ वस्तु नहीं है तथा हरिनामरूपी रत्न से बढ़कर कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ।

चैतन्यमायासुनियोगजातो
ब्रह्मा च विष्णुः शिवशङ्करश्च ।
चर्कर्ति बर्भर्ति निहन्ति लोका
नाज्ञां गृहीत्वैव हरे-र्दयालोः ॥ ७७ ॥

चैतन्य और माया के संयोग से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव शङ्कर प्रकट हुए जिनमें ब्रह्मा सृष्टि रचता है विष्णु उसका पालन-पोषन करता है तथा शिवजी संहार करता है—ये तीनों देवता, उस दयालु हरि परमेश्वर की आज्ञा लेकर ही अपना-२ काम करते हैं ।

एको रसोऽसौ सकलान्तरात्मा
प्रीणति लोकान् रमणीयरूपैः ।
पश्यत्यसौ सर्वजनानदृश्यो
वैचित्र्ययुक्तो जयति प्रभुर्मे ॥ ७८ ॥

वही परम ब्रह्म, सदा एक रस, सभी के अन्दर रहने वाला अपने सुन्दर रूपों से लोगों को प्रसन्न करता है स्वयं अदृश्य होकर भी सब लोगों को देखता है इस प्रकार आश्चर्य से भरे, उस प्रभु की जय-जयकार हो रही है ।

नोट—इस श्लोक में राग की ध्वनि भी निकलती है—काव्य में प्रसिद्ध रस भी सबके भीतर रहता हुआ अपने चमत्कारी रूप से लोगों को प्रसन्न रखता है सभी में दृष्टिगोचर होता है तथा चमत्कार युक्त है।

"रसो वै सः" ब्रह्मा को रस कहा है तथा रस को **"ब्रह्मास्वादसहोदरः"** ब्रह्मा ही कहा गया है। —काव्य प्र० समु० ४ रस प्रकरण

इस प्रकार रस और ब्रह्मा दोनों पर्य्यावाची शब्द है।

नोट—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

श्वेत० उ० ३/१९

स्थानं प्रभोः सर्वजगत्सु वेद्य-
मैश्वर्य्यभाण्डं परिपूर्णमेव।
विधाय लोकान् ससुखं विधाता
पितेव साक्षी परिपाति नित्यम्॥ ७९॥

परमेश्वर का स्थान सर्वत्र है उसके ऐश्वर्य्य का भण्डार सदा भरा रहता है वह आसानी से लोकों को बनाता है तथा उनकी पिता के समान, साक्षी बनकर, रक्षा भी करता है।

नोट—गीता कहती है।

"पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च॥ —९/१७
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी, निवासः शरणं सुहृत्
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ —९/१८

सत्यः स्वयञ्चास्य कृतिश्च सत्या

परात्मतत्त्वः पुरुषः पुराणः ।

सर्वादिभूः सर्वजगन्निवासः

सर्वैरतोऽसौ भुवि वन्दनीयः ।। ८० ।।

वह प्रभु स्वयं भी सत्स्वरूप है तथा उसकी सृष्टि भी सत्य है वह पुराण पुरुष है परम तत्त्व है सबका आदि है समस्त संसार उसमें रहता है, अतः सभी को उसकी वन्दना करनी चाहिए ।

गीता में भी उसको जगन्निवास कहा है—

"प्रसीद देवेश **जगन्निवास**" गीता—११/२५

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः

त्वमस्यविश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्तासि वेद्यं च परञ्च धाम

त्वया ततं विश्वमनन्तरूप !।। —गीता ११/३८

एका रसज्ञा यदिलक्षधास्या-

ल्लक्षातिलक्षा च ततोऽपि भूत्वा ।

यदश्नुयान्नामसुधां तदीयां

सत्यं भवेत्सार्थवती ततः सा ॥ ८१ ॥

यदि (रस को जानने वाली होने से) जिह्वा लाख गुणा हो जावे और फिर उस लाख से भी और लाख गुणा हो जावे और तब यदि वह उस प्रभु के नामामृत का आस्वादन करे तो वह निश्चय ही 'रसास्वादन' करने के कारण "**रसज्ञा**" रस को जानने वाली यह सार्थक नाम वाली बन जावे ।।

इसीलिए 'जिह्वा' का 'रसज्ञा' पर्य्यावाची नाम है—

धन्यास्तु ते ये प्रजपन्ति रामं
क: पापकीट: समतां व्रजेत्तै: ।
दीनैकबन्धो: करुणैकसिन्धो:
प्रभो: कृपैकाप्तपदं तुरीयम् ॥ ८२ ॥

वास्तव में वे लोग धन्य है जो भगवान् राम को भजते हैं उनकी कौन पापरूपी कीट बराबरी कर सकता है । (अर्थात् उनकी समता कोई नहीं रखता) जो दीनों का बन्धु है करुणा समुद्र है—उस प्रभु की कृपा से ही वह ऊँचा पद तुरीय स्तर का परमपद-मोक्षपद प्राप्त हो सकता है ।

मौने समाधौ न तथोग्रवाण्यां
दाने तथादानविधौ न किञ्चित् ।
प्राणेषु मैवं मरणेषु नापि
ज्ञाने तथान्त:करणोज्ज्वले वा ॥८३॥

न मौन रहकर, न समाधि लगाने में, न ही ऊँचा बोलने में, न दान देने में, न दान लेने में, न जीवन में और न ही मरने में, न ज्ञान प्राप्ति में और न ही अन्त:करण की शुद्धि में या उसकी उज्ज्वलता में (जीव स्वतन्त्र है) इसका अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है ।

सुखे न दु:खे न च घोरबन्धे
मोक्षे न चैव स्ववशी मनुष्य: ।
ब्रह्माश्रितं सर्वमिदं जगत्यां
तस्यैव निर्देशफला हि सृष्टि: ॥८४॥

न सुख में, न दुःख में, न घोर बन्ध में, न मोक्ष में, मनुष्य स्वतन्त्र है, अर्थात् उपरोक्त किसी भी बात में जीव स्वतन्त्र नहीं है संसार में ये सभी बातें परमेश्वर के अधीन हैं उसी की इच्छा मात्र से सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।

दिनञ्च रात्रिं पलमासवर्षान्
तिथ्यर्तु संघांश्च जलाग्निवातान् ।
पातालमभ्रञ्च विधाय धाता
पृथ्वीं तयोर्मध्यगताञ्चकार ॥८५॥

ब्रह्मा जी ने दिन, रात, पल मास वर्ष तिथि ऋतुएँ, जल, अग्नि, वायु बनाए तथा पाताल और आकाश भी बनाकर, उनके बीच पृथ्वी को खड़ा कर दिया ॥

ऋग्वेद का मंत्र देखिए—ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत । अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्यचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ —ऋग्वेद मंत्र १० सू० १९० मंत्र १–३

जीवाननेकान् बहुवर्णभेदान्
गुणैरलङ्कारसैश्च रम्यान् ।
बहुक्रियाप्रत्ययभेदभिन्नान्
प्रभुः विरेचे प्रकृतेः विशिष्टान् ॥८६॥

परमेश्वर ने अनेक रंग-बिरंगे जीवों को बनाया, जो अपने-अपने गुण अलङ्कार, रसों से रमणीय हैं तथा अनेक क्रियाओं, भिन्न-भिन्न विश्वासों द्वारा एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं तथा अपने-२ स्वभाव के कारण भी विशिष्ट हैं ऐसे जीवों को बनाया ॥

सत्यः प्रभुस्तिष्ठति सत्त्वसारे
भक्तान् परीक्ष्यैव ददाति भक्तिम् ।
लसन्ति पुण्याः प्रभुधाम्नि नित्यं
कर्मानुसारञ्च फलं लभन्ते ॥८७॥

वह सत्य रूप प्रभु अपने सत्त्वसार में विराजता है। भक्तों की परीक्षा करके ही उनको भक्ति का दान देता है, तब वे भक्त प्रभु के धाम में रहते हुए शोभा पाते हैं तथा अपने कर्मानुसार फल पाते हैं।

उक्तो मयायं खलु धर्मखण्डः
ज्ञाने स्थितः पश्यति यच्छृणुश्व ।
असंख्यवाताग्निजलानि लोके
ह्यसंख्यकृष्णान् शिवशङ्करांश्च ॥८८॥

अभी यह धर्मखण्ड कहा है—अब ज्ञान में स्थित आदमी क्या देखता है—यह भी सुनो—वह योगी ज्ञान में स्थित होकर, असंख्य वायु, अग्नि, जलों—असंख्य कृष्णों तथा असंख्य शिव-शङ्करों को भी देखता है।

ब्रह्मादिदेवांश्च विभिन्नरूपान्
सिद्धान् मुनीन्द्रान् यतिषूत्तमांश्च ।
योगीश्वरान् बुद्धमहर्षिवृन्दान्
ज्ञानी पुरः पश्यति सूक्ष्मदृष्ट्या ॥८९॥

भिन्न रूप वाले ब्रह्मादि देवताओं को सिद्ध मुनीश्वरों को, यतिश्रेष्ठों को, योगीश्वरों को, बुद्ध महर्षि समूहों को वह ज्ञानी, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अपने सामने ही खड़े देखता है।

भूम्यो ह्यनन्ताश्च सुमेरुशैलाः
अनेकसूर्याः शशितारिकाश्च ।
ध्रुवप्रदेशा बहवोऽर्णवाश्च
पुरः समायान्ति समाधिमध्ये ॥६०॥

उस ज्ञानी या योगी की समाधि में उसे अनेक वस्तुएँ देखने को मिलती हैं उनमें अनेक भूमियाँ, अनेक सुमेरु पर्वत, अनेक सूर्य-चन्द्र तारागण, ध्रुव प्रदेश, बहुत से समुद्र हैं—जो ज्ञानी पुरुष को उसकी समाधि में दिखते हैं ।

नोट—योगदर्शन भी यही कहता है—

"प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ।
भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् । चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥
ध्रुवे तद्गतिज्ञानं । मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।
प्रातिभाद्वा सर्वम्—योगदर्शन–विभूतिपाद ॥"

—सूत्र सं० २५, २६, २७, २८, ३२, ३३

देवा ह्यनन्ता असुरा ह्यनन्ताः
बहूनि रत्नानि च सिन्धुमंथात् ।
भक्ता महेन्द्रा श्रुतयो ह्यनन्ताः
प्रभोश्च सृष्टिः कथितुं न शक्या ॥६१॥

प्रभु की सृष्टि में देवता अनन्त है तथा असुर भी असंख्य हैं—समुद्र मंथन से बहुत रत्न निकले—बड़े-बड़े भक्त, इन्द्रराज, तथा वेद भी अनन्त हैं—इस प्रकार परमेश्वर की सृष्टि का कोई पार नहीं कहा जा सकता ॥

ज्ञानप्रभाभिः प्रविभासितान्तो
ज्ञानी समश्नाति रसान् सुदिव्यान् ।
रामं वसन्तं निखिलेऽपि लोके
सुखं समेति श्रमखण्डगामी ॥९२॥

ज्ञानी का अन्तःकरण, ज्ञान की किरणों से भासित हो जाता है तथा वह दिव्य स्वादु रसों का आस्वादन करता है। समस्त संसार में एक रूप से बस रहे परमेश्वर (राम) को वह श्रमखण्ड का अभ्यासी श्रम करता हुआ सहज ही प्राप्त कर लेता है।

दिव्येषु दृश्येषु निमग्नचित्तं
को नाम धीरः कथितुं समर्थः ।
आत्मोन्नतिं प्राप्य धियञ्च शुद्धां
देवैरलभ्यं पदमेति भक्तः ॥९३॥

दिव्य-दृश्यों में जिसका मन रमा रहता है, ऐसे ज्ञानी का कौन कथन कर सकता है ऐसा भक्त आतमा की उन्नति तथा शुद्ध बुद्धि को पाकर, देवदुर्लभ पद भी प्राप्त कर लेता है।

हन्ताद्य वक्ष्यामि सुकर्मखण्ड-
मध्यात्मशक्तेरतिरिक्तमत्र ।
न साधकोऽन्यो लभते प्रवेशं
धीरैकलभ्यं पदमव्ययं तत् ॥९४॥

अहो! आज मैं कर्म खण्ड का वर्णन करता हूँ—यहाँ अध्यात्मशक्ति के बिना कोई अन्य साधक प्रवेश नहीं कर सकता। वह दुर्लभ पद जो शाश्वत तथा नित्य है उसे कोई ही धीर पुरुष प्राप्त करता।

तेष्वेकरामो रमते सुनित्यं
ते चापि रामे सततं रमन्ते ।
हरेः स्वरूपं रमणीयकान्तं
सदा निजाङ्गेषु विभासयन्ति ॥६५॥

उनमें राम-परमेश्वर सदा रहता है-और वे भी राम में सदा रमे रहते तथा अपने अङ्गों द्वारा हरि के सुन्दर तथा रमणीय रूप को प्रतिभासित करते हैं-अर्थात् उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग में हरि समाया रहता है और वे हरि में समाए रहते हैं ।

गीता में कहा है—"ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्"

गीता—९/२९

निघ्नन्ति मृत्युञ्च तरन्ति मायां
ते सच्चिदानन्दरसं पिबन्ति ।
चित्तेषु येषां हरिरास्थितोऽस्ति
धन्याः सुपुण्याः भुवि कः समस्तैः ॥६६॥

जो भक्त सदा राम में रमे रहते हैं-वे मृत्यु को जीत लेते हैं । माया को पार कर लेते हैं तथा सच्चिदानन्द परमेश्वर के रसामृत का पान करते हैं-जिन के हृदय में हरि सदा वसता है वे लोग धन्य है पुण्यात्मा है उनके बराबर कोई नहीं हो सकता ।

कठोपनिषद् में लिखा है—

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते"

—कठो० उ. २/३/१४

जिसकी सब कामनाएं छूट जाती है-वह प्राणी अमर हो जाता है तथा ब्रह्म के साथ मिल जाता है ।

ब्रह्माण्डवृन्दं विरचय्य पूर्वं
सदा सहेलं परिपाति धाता ।
विचित्रलोका विविधाश्च जीवाः
प्रभोरनुज्ञां परिपालयन्ति । ९७॥

वह परमेश्वर (ब्रह्मा) अनेक ब्रह्माण्ड बनाकर, उनकी सहज में ही पालना करता है । और विचित्र लोग के तथा अनेक जीव उसी प्रभु की आज्ञा का पालन करते हैं ।

धैर्य्येण संयम्य मनः प्रगल्भं
यथार्थबोधञ्च समेत्य मत्या ।
जपंश्च नित्य हरिनामरत्नं
निजात्मशुद्धिं कुरु हेमदीप्ताम् ॥९८॥

इस हठी मन को धैर्य्य से जीतकर, बुद्धि से यथार्थ बोध वा ज्ञान प्राप्त करके, परमेश्वर का नाम रूपी रत्न जपते २ अपनी आत्मा को शुद्ध तथा सुवर्ण के समान चमका लो ।

ऐतद्धि सर्वं प्रभुनामजन्यं
विना कृपां तस्य च नास्ति शान्ति ।
निर्वैरजीवाः करुणार्द्रचित्ता
स्वजन्मसाफल्यमवाप्नुवन्ति ॥९९॥

यह सभी कुछ प्रभु के नाम की महिमा से ही होता है उस की कृपा के बिना शान्ति नहीं मिलती । तब जीव निर्वैर होकर, दया से पूर्णहृदय वाले, अपने जन्म को सफल कर लेते हैं ।

"निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव" —गीता ११/५५

लक्ष्मी गृहे वर्धंत एव तस्य
यशश्च शुभ्रं परितस्तनोति ।
ब्रह्मात्मसायुज्यरसञ्च भुंक्ते
प्रभोः प्रसादः सुलभोऽस्ति यस्य ॥१००॥

ऐसे प्रभु के भक्त के घर में लक्ष्मी दिनों दिन बढ़ती है उसका शुभ्र यश चारों ओर फैल जाता है वह ब्रह्म के साथ मिल कर एक हो जाता है तथा ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करता है–जिस पर प्रभु की कृपा सुलभ होती है ।

वातो गुरुर्वारि पिता च बोध्यो
माता धरित्री धरणात् त्रिलोकान् ।
रात्रिदिवाभ्यां परिपोष्यमाणं
सर्वं जगत् क्रीडति सम्प्रसन्नम् ॥१०१॥

वायु गुरु है जल पिता है तीनों लोको को धारण करने के कारण पृथ्वी माता है इस प्रकार दिन और रात द्वारा परिपुष्ट हुआ सारा संसार प्रसन्नतापूर्वक खेलता है । अर्थात् प्रभु की आज्ञा में रहकर जगत् निर्भय हो जाता है । रात को सोता है दिन को काम करता है ।

लोकस्य कर्माणि परीक्ष्य धर्मः
यथाविधानञ्च फलानि दत्ते ।
नाम्नः प्रभावात्सुजना भवाब्धिं
तरन्ति लोकानपि तारयन्ति ॥१०२॥

लोगों के पुण्य पाप कर्मों की परीक्षा करके, धर्मराज उनको यथाविधि फल देता है–सज्जन भक्त, हरि नाम के प्रभाव से इसे संसार रूपी समुद्र को पार कर लेते हैं तथा औरों को भी पार उतार देते हैं ।

उपसंहार में, कवि की अन्त में प्रार्थना—

भक्तेः सुधारसतरङ्गशतेन युक्तः
पेपीयमानमधुसाररसोऽपि पूर्णः
दिव्यो मया सुविहितो गुरुसम्प्रसादात्--
सोऽयं शिवाय भवतां भवतात् सुकुम्भः ॥१०३॥

भक्ति रस की, यह सौ श्लोकों रूपी तरङ्गों से भरा, भक्तों द्वारा बार २ पिया जाने पर भी पूर्ण रहने वाला, अपने गुरु की कृपा से मेरे द्वारा अच्छी प्रकार बनाय हुआ यह दिव्य कुम्भ (घड़ा) (अमृत कलश) आप सबके कल्याण के लिए बना रहे ॥

इति श्री स्वयंप्रकाश कवि विरचितं जप-जी-शतकं
परिसमाप्तम् ॥
इति शुभं भूयात्

[illegible]